नागपुर, गुरुवार, 18 जून 2015

लोकमत समाचार

शिक्षा का उद्देश्य : स्वप्न और यथार्थ

चितरंजन मिश्र
प्रतिकुलपति, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय

देश भर में सभी स्तर की पढ़ाई का, चाहे वह व्यावसायिक हो या कुछ और, नया शैक्षणिक सत्र शुरू होने जा रहा है. पिछले सत्र के परीक्षाफल घोषित हो गए हैं या हो रहे हैं. बच्चों की पीठ पर बस्ते का बोझ तमाम मनाहियों के बावजूद बढ़ रहा है और अभिभावकों की जेब खाली होने को आतुर है. मध्यवर्गीय अभिभावक अपने बच्चों के सुनहरे भविष्य में अपनी कुंठाओं की चाशनी लपेटकर रंगीन सपनों और रंग-बिरंगी परिधानों में बच्चों को विद्यालय पहुंचाने/भेजने को उत्सुक हैं, इस मौसम में अखबारों से लेकर बाजार-सड़क तक सबसे ज्यादा विज्ञापन होर्डिंग इसी पसरते हुए व्यवसाय से जुड़े हैं. सभी बच्चों को ऊंचे ओहदे पर पहुंचना है, ऊंची कमाई की जगह तक छलांग लगानी है. सभी अभिभावकों को इसके लिए अपनी औकात से बहुत ज्यादा खर्च करने को तैयार रहना है, बैंक कुछ शर्तों पर ऋण उपलब्ध कराने के लिए भी तैयार हैं. सबसे ज्यादा उपेक्षित है इस बाजार-व्यवसाय में तो शिक्षा की समूची संकल्पना में सामाजिक उत्तरदायित्व का बोध, अपने को दूसरे से जोड़ने का भाव, दूसरे की पीड़ा के साथ आत्मीय सहकार रचने का भाव और जिज्ञासा, सृजनात्मकता तथा अपने परिवेश के साथ अंतरंगता कायम करने वाले विवेक के सृजन का भाव. ऐसी गलाकाट प्रतियोगिता और रैट रेस में फंसाने वाली शिक्षा व्यवस्था को बाजार, व्यवसाय और पूंजी के हवाले करके समूची व्यवस्था अपने कर्तव्य की इतिश्री समझने लगी है.

कई वर्षों पूर्व गोरखपुर विश्वविद्यालय में भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. ए.पी.जे.अब्दुल कलाम ने छात्रों और शिक्षकों को संबोधित किया था. उनके सचिवालय ने सूचित किया था कि इस अवसर पर वे मेधावी छात्रों से संवाद भी करेंगे. विश्वविद्यालय के सर्वोच्च अंक प्राप्त करने वाले छात्रों को इस संवाद के लिए तैयार किया जा रहा था. तैयारी के सिलसिले में, पूर्वाभ्यास के तौर पर तत्कालीन कुलपति प्रो. रेवती रमण पांडेय ने छात्रों से लगभग उसी तरह के सवाल पूछे जैसा आमतौर पर राष्ट्रपतिजी को पूछना था. तुम्हारे जीवन का लक्ष्य क्या है? क्या बनना चाहते हो? करीब सत्तर प्रतिभाशाली मेधावी और सर्वोच्च अंक प्राप्त करने वाले छात्रों ने अपने जीवन के लक्ष्य में जीविका के साधनों का ही उल्लेख किया. किसी को प्राध्यापक के होने के लिए राष्ट्रीय पात्रता परीक्षा उत्तीर्ण करनी थी, किसी को प्रशासनिक सेवाओं में जाना था, किसी को कुशल प्रबंधक बनना था और किसी को कम्प्यूटर में दक्षता प्राप्त करनी थी. क्या यही हमारी शिक्षा का लक्ष्य है? किसी के भीतर कोई आदर्श, कोई राष्ट्रीय आकांक्षा, कोई सार्वजनिक सेवा का भाव, कोई मूल्य और आदर्श नहीं पनप रहा है. एक से एक प्रतिभाशाली छात्र विभिन्न प्रतियोगिताओं में चुने जाते हैं, वे शायद चढ़ती उम्र में थोड़े आदर्शवादी भी रहे हों, पर क्या हो जाता है अचानक उन्हें, आदर्श कहां तिरोहित होते जा रहे हैं? इस प्रकार के खोखले राष्ट्रीय दृष्टि और उत्तरदायित्व से नजर चुराने वाले स्वार्थी और समाज निरपेक्ष लोगों को तैयार करने का दोषारोपण अध्यापक पर भी किया जा सकता है, परंतु वह भी तो इसी शिक्षा व्यवस्था और सामाजिक पर्यावरण का उत्पाद बनकर रह गया है. उसे भी छूट और अधिकार है कि इस पूरी व्यवस्था के संचालन के लिए जिम्मेदार लोगों को कोसे क्योंकि संचालन के केंद्र में उसकी भागीदारी को स्वीकार किया ही नहीं गया है. स्थितियों के दबाव से और परिस्थितियों के अनुत्तरदायी व्यवहार से उसने भी उत्तरदायित्व का गुरुतर चोंगा उतारकर रख दिया है.

> शिक्षा का क्षेत्र मात्र सूचनाओं के संग्रह का क्षेत्र नहीं है बल्कि यह गहरे विमर्श और विश्लेषण की क्षमता के विकास और सामाजिक सरोकारों तथा मूल्यों के निरंतर शोध का क्षेत्र है.

नीति नियामकों और उत्तरदायी होने का ढोल पीटने वाली संस्थाओं को देखना और सोचना होगा कि शिक्षा का क्षेत्र मात्र सूचनाओं के संग्रह का क्षेत्र नहीं है बल्कि यह गहरे विमर्श और विश्लेषण की क्षमता के विकास और सामाजिक सरोकारों तथा मूल्यों के निरंतर शोध का क्षेत्र है. शिक्षा को हमें इस लायक बनाने के उपाय खोजने होंगे कि वह उन लोगों की दृष्टि ठीक करने का साधन बने जो समृद्धि के उपभोक्तावाद में ही जीवन के उद्देश्य और अर्थ खोजते हैं. साथ ही शिक्षा द्वारा शहरी परिष्कार और देहाती लोकतत्व को एक साथ जोड़ना होगा और शहर-देहात संबंध को जीवन के सामान्य अंग के रूप में स्थापित करना होगा. निश्चय ही इसके लिए यंत्रों पर अपनी निर्भरता अपेक्षाकृत कम करके, सूचनाओं के जंजाल से थोड़ी मोहलत लेकर गहरे अनुशीलन में उतरना होगा. तात्कालिक और फौरी कार्रवाइयां जिनकी ओर हम बड़ी तेजी से उद्यत हैं, हमारी चेतना को सिर्फ कुंद कर सकती हैं, विस्तृत नहीं. ■■